वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

JUN 2025

# स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :

**श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट**

भावनगर - ३६४ ००१.

**जिनके हृदयमें केवल कृपालुदेव बिराजते थें ऐसे पूज्य श्री सौभाग्यभाईके समाधि दिन (ज्येष्ठ वदि १०) पर उनके चरणोंमें कोटी कोटी वंदन**

"....श्री सौभागने देहका त्याग करते हुए महामुनियोंको भी दुर्लभ ऐसी निश्चल असंगतासे निज उपयोगमय दशा रखकर अपूर्व हित किया है, इसमें संशय नहीं है। इस क्षेत्रमें, इस कालमें श्री सोभाग जैसे विरल पुरुष मिलते हैं, ऐसा हमें वारंवार भासित होता है। श्री सोभागकी सरलता, परमार्थ संबंधी निश्चय, मुमुक्षुके प्रति उपकारशीलता आदि गुण वारंवार विचारणीय है।

मुमुक्षुको श्री सोभागका विस्मरण करना योग्य नहीं है।"

– श्रीमद् राजचंद्र

स्वानुभूतिप्रकाश
वीर संवत्–२५५१, अंक–३३०, वर्ष–२७, जून–२०२५

## कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

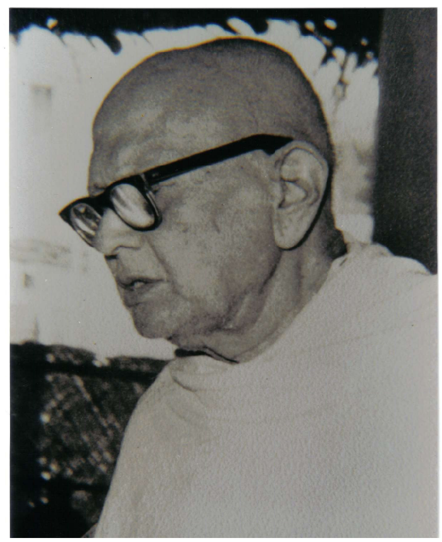

स्वयंमें जो गुण न हों व अन्य कोई उस गुणको बतलाए या कहे कि तुम ऐसे गुणी हो, तब ज्ञानीको ऐसा लगता है कि मुझमें यह गुण नहीं है और यह मुझमें ऐसा गुण बतलाता है तो वह मुझ पर आरोप करता है। पर अज्ञानीकी, स्वयंमें गुण न होने पर भी, ऐसी भावना रहा करती है कि मुझे कोई गुणी माने तो अच्छा – यह उसका अज्ञान है । १०८

*

एक अवगुण टले तो उसके प्रतिपक्षमें गुण प्रकट होना ही चाहीए । गुण प्रकट हो तभी अवगुण टला हुआ कहलाए । १०९

*

आकुलतावाले–सुखसे भी शरीरकी व्याधि भूल जाते हैं, तो अनाकुल–सुखसे जगत कैसे न भूला जाए ? अर्थात् आत्माके स्वाभाविक सुख द्वारा संसारके चाहे जैसे घोर दुःख भी भूले जाते हैं । ११०

*

जगतका प्रेम घटाये बिना परमेष्ठीके हृदयमें क्या है, उनके कलेजेमें क्या है ? यह समझमें नहीं आता । अतः परमेष्ठीके स्वरूपके ज्ञानके लिए जगत–प्रतिका प्रेम घटाना चाहिए । १११

*

प्रश्न :– ज्ञान, ज्ञान को तो करे न ?

उत्तर :– मात्र ज्ञानको ही नहीं पकड़ना वरन् अखंड आत्माका अनुभव करना – यह ज्ञान प्रधान कथन है, परन्तु ज्ञान सहित सभी शक्तियोंके निर्मल परिणाम द्वारा आत्मा परिणमित होती है। ११२

*

प्रभु तो चैतन्यधन है – जिसमें मोक्ष व मोक्षमार्गका करना नहीं है , बन्ध व बन्धके कारणका करना नहीं है । सम्यग्दर्शनका विषय

ध्रुव भगवान बन्ध-मोक्षके कारण व बन्ध-मोक्षके परिणामसे शुन्य है । त्रिकाली ध्रुव तो सम्यग्दर्शनके परिणामसे भी शून्य है । उत्पाद-व्यय तो परिणाम हैं, उन्हें ध्रुव स्पर्श ही नहीं करता – तो करे कैसे? ११३

*

जो शुद्ध पारिणामिक भाव है वह भावनारूप नहीं और वर्तमान पर्यायरूप भी नहीं है । मोक्षके कारणरूप जो अबन्ध परिणाम हैं वे भावनारूप हैं , और त्रिकाली शुद्ध पारिणामिक तो भावनारूप नहीं है – यह तो भाव है । राग तो कहीं दूर रह गया, पर मोक्षका मार्ग भी भावनारूप होनेसे शुद्ध पारिणामिकभावसे भिन्न है । ११४

*

मिथ्यात्वभाव है सो विकारीभाव है, वह भी अपने स्वयंके षट्कारकों द्वारा होता है, उसे कर्म अथवा निमित्तकी अपेक्षा नहीं । जब विकारकी पर्याय आत्माका स्वभाव ही नहीं है और आत्मामें कोई ऐसी शक्ति भी नहीं है जो विकारको करे, तथापि विकार स्वतंत्ररूपसे स्वयंके एक समयके षट्कारसे होता है । तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय मोक्षमार्गरूप जो निर्मल पर्याय है वह तो स्वयंके एक समयके षट्कारकसे परिणमित होकर उत्पन्न होगी ही । जब निश्यय मोक्षमार्गको त्रिकाली शुद्ध द्रव्यकी भी अपेक्षा नहीं, तो व्यवहार रत्नत्रयके रागसे उत्पन्न हो – ऐसा कैसे संभव हो सकता है ? ११५

*

शुद्धपारिणामिक भावरूप त्रिकाली सहजानन्द प्रभुका अवलंबन लेनेवाली (त्रिकाली निजानन्द प्रभु तो भाव है और उसके लक्ष्यसे-उसके अवलंबनसे जो निश्चय मोक्षमार्ग प्रकट होता है वह ) भावना है । ऐसी उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भावरूप भावना समस्त रागादिसे रहित है । उपशमादिभाव समस्त रागादिसे रहित हैं , अर्थात् रागका कोई भी अंश मोक्षमार्ग नहीं हो सकता । जिस भावसे तीर्थंकर नामकर्म बंधता है – वह भाव भी मोक्षका मार्ग नहीं है, वरन् उदयभाव होनेसे बन्धभाव है और ये जो उपशमादि भाव हैं – वे समस्त रागादि रहित होनेसे मोक्षमार्ग हैं, मोक्षके कारण हैं । ११६

*

जो शक्तिरूप मोक्ष है, वह तो त्रिकाल स्वभावभाव है । वह मोक्ष करना है या मोक्ष हुआ है, ऐसा नहीं , परन्तु इस शक्तिरूप मोक्षका आश्रय लेकर जो पर्याय होती है , वह व्यक्तिरूप मोक्ष है । वह व्यक्तिरूप मोक्ष – मोक्षमार्गकी प्रर्यायसे प्राप्त होता है, परन्तु द्रव्यसे प्राप्त नहीं होता । पर्याय ही मोक्ष प्रकट करती है, त्रिकाली ध्रुवद्रव्य मोक्षको प्रकट नहीं करता, न ही जड़कर्म मोक्षको प्रकट करता है। इसे भी सच में तो शुद्धउपादान-कारणभूत होनेसे मोक्षका कारण कहा है, परन्तु यह भी एक अपेक्षासे ही है । वास्तवमें तो मोक्षमार्गका व्यय होने पर ही मोक्षकी पर्याय होती है । ११७

*

अनन्तशक्तिका सम्राट ऐसा जो भगवान आत्मा वह सम्यग्दर्शनका ध्येय है, परन्तु सम्यग्दर्शनरूप ध्यान उसमें नहीं है । सम्यग्दर्शन ध्यान है और त्रिकाली वस्तु ध्येय है । ऐसे ही स्वसंवेदनज्ञान – शास्त्रज्ञान नहीं , परलक्षी ज्ञान नहीं, – ध्यानरूप है और निजानन्द प्रभु ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं, क्योंकी ध्यान विनश्वर है । निश्चय मोक्षमार्ग तो पर्याय है और मोक्ष होते

ही मोक्षमार्गकी पर्यायका नाश हो जाता है...व्यय हो जाता है । शुद्ध पारिणामिकभाव तो अविनाशी है, किसी परिणमनका होना , न होना उसमें नहीं है। ११८

*

सम्यग्दर्शनमें क्षयोपशमज्ञान है, वह कैसा है ?...कि निर्विकार, स्वसंवेदन लक्षण वाला है -ऐसा कहकर कहते हैं कि शास्त्रज्ञान कार्य नहीं करता, परन्तु निर्विकारी स्व-संवेदनज्ञान ही कार्य करता है, उसे यहाँ क्षयोपशमज्ञान कहा है । सम्यग्दर्शन होने पर जो ज्ञान है - वह क्षयोपशमज्ञान है, भले ही क्षायिक सम्यग्दर्शन हो, परन्तु ज्ञान तो क्षयोपशमज्ञान है । ११९

*

निश्चय मोक्षमार्ग तो निर्विकल्प समाधि है। उससे उत्पन्न हुए अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव जिसका लक्षण है , ऐसा स्व-संवेदनज्ञान ही ज्ञान है । शास्त्राध्ययन ज्ञान नहीं, परन्तु निर्विकल्प स्वसंवेदन ही ज्ञान है । सुखानुभूति-मात्रलक्षणरूप स्व-संवेदनज्ञानसे ही आत्मा जानने योग्य है, वह अन्यथा जाननेमें आवे - ऐसा नहीं है । निर्विकारी - स्वसंवेदनज्ञानसे तो जाना जाता है परन्तु भगवानकी वाणीसे जाननेमे नहीं आता, भगवानकी भक्तिसे जाना जाए - ऐसा भी नहीं है । आनन्दकी अनुभूतिरूप स्व-संवेदन ज्ञानसे जाननेमें आए - ऐसा मैं हूँ और समस्त आत्मायें भी अपने स्वसंवेदनज्ञानसे ही जाननेमें आए ऐसी हैं। १२०

*

निर्विकारी आनन्द सहित जो ज्ञान होता है उसे सम्यग्दृष्टिको क्षयोपशम ज्ञान कहते हैं। सम्यग्दर्शन एवम् आत्म-अनुभवकी स्थितिरूप पर्यायमे संम्पूर्ण आत्मा नहीं आता, परन्तु समस्त शक्तियाँ उस पर्यायमे एकदेश प्रकट होती है । तेरा आत्मा तुझे किस प्रकार जाननेमें आये ? कि आनन्दकी अनुभूति सहित स्वसंवेदन ज्ञानसे आत्मा जाननेमें आए - ऐसा है, जब अनन्त शक्तियाँ पर्यायमें एक अंश प्रकट होती हैं, तब आत्मा जाना जाता है । १२१

*

आत्माको जाननेवाला ध्यातापुरुष-धर्मीजीव, जिसको स्वसंवेदन आनन्दानुभूति सहितका एक अंश ज्ञान प्रकट हुआ है - ऐसा ध्यानी-ज्ञानी - उस प्रकट दशाका ध्यान नहीं करता। अनुभवकी जो पर्याय है वह एकदेश प्रकट पर्यायरूप है, फिर भी ध्याता पुरुष - ध्येयका ध्यान करनेवाला पुरुष उस प्रकट पर्यायका ध्यान नहीं करता ।

धर्मी किसका ध्यान करता है ? घर्मी जीवको सम्यग्दर्शनकी पर्याय प्रकट होने पर भी वह उसका ध्यान नहीं करता, तो किसका ध्यान करता है ? -कि एक समयकी पर्यायके पीछे विराजमान - सकल निरावरण, अखंड, एक, प्रत्यक्षप्रतिभासमय, अविनश्वर, शुद्ध, पारिणामिकभावलक्षण निज परमात्मद्रव्यका ध्यान करता है ।

सम्यग्दृष्टिका ध्येय क्या ? सम्यग्दृष्टि धर्मीका विषय क्या ? - कि त्रिकाली आत्मा, सकल निरावरण एक अखंड वस्तु ही इनका विषय है । १२२

*

प्रश्न :- सम्यग्दर्शन होते ही सब कुछ व्यवस्थित है ?

उत्तर :- सब सहज ही व्यवस्थित है, पर

सम्यग्दर्शन होने पर उसे निर्णय हो जाता है कि सब कुछ व्यवस्थित ही है । १२३

*

भावशक्तिके कारण प्रत्येक गुणकी पर्याय भवनरूप होगी ही, पर्याय होती ही है, होती है –उसे करना क्या ? सचमुच तो द्रव्यके ऊपर दृष्टि गई, द्रव्यको अपनाया कि बस पर्याय प्राप्त हुई और वही उसके प्राप्त होनेका काल था । वह पर्यायका स्वकाल था, उसका भी वह कर्ता नहीं, क्योंकि भावशक्तिके कारण भवन तो है ही । जो है उसको करना कया ? १२४

*

जिस समय जिस प्रकारकी जो पर्याय जहाँ होती है उसकी केवलज्ञानमें नोंध है । केवलज्ञानकी एक समयकी पर्याय तीन लोक और तीन कालकी पर्यायोंको प्रत्यक्ष जानती है । जो पर्याय हुई ही नहीं, उसे भी भविष्यममें जिस रूप होगी उसे भी उस रूप वर्तमान् में प्रत्यक्ष जानती है । निगोदका जीव किस समय सिद्ध होनेवाला है वह केवली वर्तमानमें प्रत्यक्ष जानते हैं। जिसको केवलज्ञानका ऐसा निर्णय होता है , उसकी दृष्टि पर्यायसे खिसककर द्रव्यमें चली जाती है और भगवानने उसके भव देखे ही नहीं । जिसको केवलज्ञानके अस्तित्वकी स्वीकृति होती है, उसे ज्ञानस्वभावका निर्णय हुए बिना नहीं रहता । अनादि अनन्त जिस समय जो पर्याय होनी है, वह तब ही होगी । अनन्त पर्यायोंका (निश्चित) समय – ऐसा स्वकाल आगे–पीछे नहीं होता, क्रमानुसार ही होता है । १२५

*

क्रमबद्ध सिद्ध करनेका हेतु अकर्तृत्व बतलाना है । एक तत्त्वके परिणामको दूसरा तत्त्व करें, ऐसा तीन कालमें भी नहीं हो सकता । जिस समय जिस द्रव्यकी जो क्रमबद्ध पर्याय होती है उसका कर्ता अन्य द्रव्य नहीं है, ऐसा बतलाकर यह सिद्ध करना है कि जीव रागका कर्ता नहीं, जीव तो ज्ञान–श्रद्धा–आनन्दरूप कार्य ही करता है । १२६

*

जीव ज्ञान और आनन्दरूप परिणमित होता हुआ रागके परिणामका कारण नहीं है । भगवान चैतन्य–प्रकाश स्वरूप अतीन्द्रिय–आनन्दके स्वभावसे परिपूर्ण है । जिसने उसे दृष्टिमें लिया है, ऐसा जीव ज्ञाता–दृष्टाके परिणामसे उत्पन्न होता हुआ, रागके कार्यका कर्ता नहीं है । जो जीव अनुभवके कार्यरूप उत्पन्न हुआ, वह रागके कार्यरूप उत्पन्न हो – ऐसा नहीं हो सकता, कारण कि उसकी विकाररूप परिणमित होनेकी कोई शक्ति ही नहीं है । जीव स्वयं कर्ता अर्थात् कारण और वीतरागी पर्याय उसका कार्य – ऐसा होने पर जीव न तो रागरूपी कार्यका कारण है और न ही परद्रव्यके कार्यका कारण । १२७

*

निरंतर कल्याणमय – ऐसे परमात्मतत्त्वमें देह–मन–वाणी अदि उदय भाव हैं ही नहीं । राग तो है ही नहीं, परंतु शुद्धनय, तो उसमें ध्यानावली होनेका भी निषेध करता है । आ हा हा ! परमात्मतत्त्व तो सदा शुद्ध ही है । पर्यायमें चाहे ध्यानकी जमावट जमी हो – आनन्दकी परिणति जमी हो, परन्तु शुद्धनय तो ऐसी पर्यायका अस्तित्व भी परमात्मतत्त्वमें स्वीकार नहीं करता। अहा हा ! स्वयंको पामर...पामर...पामर मान लिया है, पर स्वयं सदा ही परमात्मा है, ऐसा इसको विश्वास ही

नहीं होता । इसने स्वयंको साधारण प्राणी मान लिया है । १२८

✻

अरे भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढय नहीं। तुम्हारे अन्तरमें परमात्मा विराजते हैं, इससे अधिक धनाढ्यपन अन्य क्या हो सकता है ? ऐसे अपने परमात्मस्वरूपकी बात सुनते ही तुझे अन्तरसे उल्लास, उछलना चाहिए, इसकी लगन लगनी चाहिए, इसके पीछे पागल हो जाना चाहिए – ऐसे परमात्मस्वरूपकी धून लगनी चाहिए । सच्ची धुन लगे तो, जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ? अवश्य ही प्रगट हो। १२९

✻

एक समयकी वर्तमान हलचलवाली परिणमनशील पर्यायके पीछे प्रभु स्वयं विराजमान है, परन्तु पुण्य–पापको देखनेके चक्करमें उसके पीछे विराजमान भगवानको तूँ नहीं देखता । १३०

✻

ज्ञानदशामें अनुभूति–स्वरूप भगवान जाननेमें आने पर भी तूँ उसे क्यों नहीं जानता। अरेरे!! ज्ञानदशामे भगवान जाननेमें आने पर भी तूँ अनादिसे विकल्पाधीन होनेसे भगवानको नहीं जानता। ज्ञानरूपी दर्पणकी स्वच्छतामें भगवान आत्मा बिंबित होने पर भी स्वयंको कैसे खबर नहीं होती ?– कि रागके विकल्पवश होनेसे उसकी नज़रमें राग ही आते हैं, जिससे भगवान अनुभूत होते हुए भी जाननेमें नहीं आता। अज्ञानी अनादिसे दया–दान आदि विकल्पोंका गुलाम होनेसे ज्ञानकी वर्तमान दशामें अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा अनुभूत होने पर भी उसे जाननेमें नहीं आता। १३१

✻

अनादिसे जो मोहसेना है, उसे किस रीतिसे जीते ? उसको जीतनेका उपाय क्या ? ...यह उपाय आचार्य महाराज यहाँ बतलाते हैं – जिन्होंने तीन काल और तीन लोकको एक समय मात्रमें जान लिया है सर्वप्रथम ऐसे अर्हन्तदेवके द्रव्यको, गुणको और पर्यायको यथार्थरूपसे जानना । यथार्थरूपसे अर्थात् ? –कि उन्हें जानकर स्वयं भी उन जैसा है, ऐसा मिलान करने हेतु स्वके लक्ष्यसे अर्हन्तके द्रव्य–गुण–पर्यायको जानना । १३२

✻

दुष्कर लगे तो भी, इस बिना चतुर्गतिरूप भ्रमणचक्र न रुके । बापू ! ज्ञानकी जो वर्तमान पर्याय है, उस पर तो अनादिसे लक्ष्य है, परन्तु उसके निकट जो परमपुरुष, सर्वोत्कृष्ट प्रभु विराजते हैं , उनका लक्ष्य कभी नहीं किया । इसलिए अब इस पर्यायको वहाँ अन्तरमें ढाल, भाई! १३३

✻

प्रथम पर्यायका लक्ष्य छुड़वाकर, पश्चात् गुण–गुणीके भेदका लक्ष्य छुड़वाया है । क्रम डालकर समझानेके सिवाय अन्य किस रीतिसे समझाये ? इसलिए कहते हैं कि पर्यायको अन्तर्मुखी कर और साथमें जो गुण–गुणीके भेद हैं , उनका तिरोधान कर दे, अदृश्य कर दे, ढक दे – ऐसा कहा जाता है । वस्तु जो द्रव्य है, याने कि चेतन ऐसा द्रव्य और चैतन्य उसके गुण – ऐसे भेदको ढककर एक अभेदको लक्ष्यमें ले। यह तो तीन लोकके नाथकी दिव्यवाणी है। अनन्तकालमें जो नहीं किया उसे करनेके लिए यह है । १३४

# जीवको अधोगतिमें जानेका कारण – कुटुंबमोह और परमें निजबुद्धि !

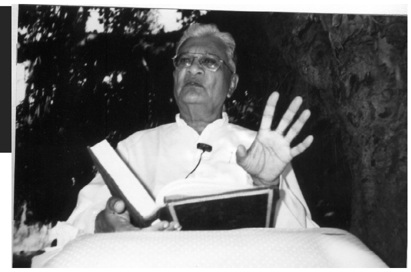

## श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक–५१० पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे... )

(यहाँ) क्या कहते हैं ? उन वृत्तियोंका उपशमन अथवा निवर्तनका यदि कोई उपाय नहीं किया जाये तो उनका अभाव नहीं होगा। यह बात स्पष्ट सम्भवित दिखती है। *'कई बार पूर्वकालमें वृत्तियोंके उपशमन तथा निवर्तनका जीवने अभिमान किया है,...'* (अर्थात्) मैं त्यागी हो गया, मैंने ऐसा छोड़ दिया, ये कर दिया, वह कर दिया, व्रत ले लिया, नियम कर लिया – वह सब अभिमान किया है। (आत्मसिद्धिमें आता है) *'लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं, ग्रह्युं व्रत अभिमान, ग्रहे नहीं परमार्थने, लेवा लौकिक मान।'* परमार्थ माने आत्मकल्याणको ग्रहण करता नहीं। लोगोंमें मान मिलेगा – ये तपस्वी हैं, ये व्रतधारी हैं, ये दानवीर हैं। पूर्वकालमें जीवने (इस प्रकारका) अभिमान किया है। *'परंतु वैसा कोई साधन नहीं किया,...'* आत्मकल्याण होवे ऐसा कोई साधन किया नहीं।

*'और अभी तक जीव उस प्रकारका कोई उपाय नहीं करता; अर्थात् अभी उसे उस अभ्यासमें कोई रस दिखायी नहीं देता;...'* पूर्वकालमें आत्मकल्याणका कुछ प्रयास किया नहीं और अभी भी उसे आत्मकल्याणमें रस नहीं है। *'तथा कटुता लगनेपर भी उस कटुताकी अवगणना कर यह जीव उपशमन एवं निवर्तनमें प्रवेश नहीं करता।'* आत्मकल्याणका मार्ग कडुआ लगता है, अच्छा नहीं लगता। भले ही अच्छा नहीं लगे, भले ही थोड़ा कठिन लगे लेकिन (आत्मकल्याण) करना ही है, ऐसा निर्धार करके जीव प्रवेश नहीं करता।

*'यह बात इस दुष्टपरिणामी जीवके लिये वारंवार विचारणीय है,...'* यह बात बार–बार विचार करने योग्य है, गौण करने योग्य नहीं है, उपेक्षा करने योग्य नहीं है। *'किसी प्रकारसे विसर्जन करने योग्य नहीं है।'* माने उपेक्षा करने योग्य नहीं है कि, चलो, छोड़ो बात ! अपनेसे नहीं होगा ! ऐसा आत्मकल्याण मेरेसे नहीं होगा, ऐसे गलत निर्धारकी कभी आड़ लगाना नहीं। ऐसी आड़ मत लगाना कि, मेरेसे नहीं होगा। क्या करूँ ? मेरेसे नहीं हो सकता। ऐसा कभी नहीं लेना। मेरेसे क्यों नहीं होता ? ऐसे लेना। होना ही चाहिये। मैं क्यों नहीं कर सकुं ? जब दूसरे कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता?

देखिये ! अभी तक अनंत जीव सिद्धालयमें पहुँचे कि नहीं पहुँचे ? (उनमेंसे) एक भी सिद्ध परमात्माका जीव ऐसा नहीं है कि जो पहले हम जैसा संसारी नहीं था। सब सिद्धात्माओंने सिद्ध होनेके पहले अनंत काल चारों गतिओंमें परिभ्रमण किया। सबका पंच परावर्तन अनंत बार हो गया। एक भी (सिद्ध) पहले नहीं हैं।

पहला कोई नहीं है और अंतिम भी कोई नहीं है। कोई पहले (नंबरमें) नहीं आयेगा और कोई अंतिम (नंबरमें) नहीं आयेगा। वहाँ कभी संख्या नहीं थी और पहले (सिद्ध भगवानने) प्रवेश किया, ऐसा नहीं है। अनंतकाल पहले अनंत (सिद्ध) थे – इसके अनंतकाल पहले अनंत थे। ये थोड़ा गणितके बाहरका विषय है। अंकगणितके बाहरका विषय है। यह अंकगणितके बाहरका विषय भी (एक) जैन दर्शनके अलावा कहीं नहीं है। अनादि अनंत है। अनंतका (भी) अनंत भेद! ये गणितके बाहरके विषयको, गणितके अंदर लेने जानेसे इस बातका पता नहीं चलेगा। कोई भी संसारी नहीं थे और सिद्ध हुए, ऐसा एक भी (जीव) नहीं है। पहले संसारी नहीं थे और पहलेसे सिद्ध थे, ऐसा एक भी (जीव) नहीं है। सभी संसारी थे। जितने अनंतानंत सिद्ध हुए वे (सब) संसारीमेंसे ही सिद्ध हुए हैं। जब अनंत (जीव सिद्ध) हो सकते हैं तो मैं क्यों नहीं हो सकता ? (मैं भी) हो सकता हूँ। ऐसे ही लेना। 'मैं नहीं हो सकता' ऐसे निराशावादी कभी भी होना नहीं – आशावादी रहना। कभी भी निराशावादी नहीं होना।

क्योंकि हर आत्मामें – मेरेमें – आपमें सभीमें अनंत शक्ति है। शक्ति कितनी है? संख्यासे भी अनंत हैं और एक-एक शक्तिका power भी बेहद है। जिसकी कोई हद नहीं – सीमा नहीं। जैसे अग्निका एक कण – चिनगारी सारे विश्वको जलानेमें समर्थ है ! वैसे ज्ञानका एक कण (अंश) जहाँ है, वहाँ लोकालोकको जाननेवाली अनंतज्ञान शक्ति है! शांति भी बेहद है ! आनंद भी बेहद है ! सुख भी बेहद है। सभी एक जातिका है। जब अपनेमें ही अनंत सुख, शांति और आनंद लबालब भरा हुआ है, तो उसमेंसे प्राप्त नहीं होनेकी क्या बात है ? क्यों नहीं प्राप्त होवे ? दूसरेसे लेना हो तो पराधीनता करनी पड़े, लेकिन दूसरेसे (लेनेकी) पराधीनता तो है नहीं, अपने आपसे काम होता है। उसमें किसीकी ज़रूरत नहीं है, कोई मदद नहीं करता। शक्ति स्वयं कार्य करती है। शक्तिको मददकी ज़रूरत पड़े तो शक्तिका नाम देना बेकार है। उसे शक्तिका नाम क्या देना ! खुद ही का नाम 'शक्ति' है, उसे किसीकी ज़रूरत नहीं है।

इसलिये इस मार्गमें प्रवेश होनेके पूर्व संकेतरूपमें शक्तिका सळवळाट आता है (खलभली मचती है)। इसके उपादानमें अंदरसे फेरफार होने लगता है। भले उसकी समझमें आये (या) नहीं आये, लेकिन होता है जरूर ! अंदरमें खलभली चालू हो जाती है। जैसे कोई आदमी गाढ़ निद्रामें सोया हुआ है, ऐसे जीव अज्ञाननिद्रामें सोया हुआ है। वह जगकर कुछ प्रवृत्ति करेगा इसके पहले करवट तो बदलेगा, कुछ हलचल तो चालू हो जायेगी। बादमें जगेगा न? ऐसे मोक्षमार्गमें अपने हितके लिये आत्मा जागृत होता है। इसके पहले भीतरमें कुछ खलभली चालू हो ही जाती है। सबको ऐसा अनुभव होता है। जो भी इस मार्गमें आते हैं (उन) सबको ऐसा अनुभव होता ही है।

मुमुक्षु :- अनादिसे जो संसार परिणति चल रही है, उसके साथ टकराव शुरू हो जाता है।

पूज्य भाईश्री :- वह तो बादमें (होता है)।

यह तो इसके पहले – टकराव शुरू होवे इसके पहले आत्मा हलचल करना शुरू करता है। उस भूमिकामें भले समझमें नहीं आवे कि, ये क्या हो रहा है ? किन्तु हलचल होना शुरू हो ही जाता है। इसका कारण है कि, भीतरमें अनंत शक्ति है। फल क्या आयेगा ? अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य ! अनंत... अनंत.... प्रगट होनेवाला है। अनंत प्रगट होगा तो इतनी बेहद शक्ति अंदर भरी है, उसकी कुछ प्रक्रिया चालू होनेवाली है। तो यह शक्ति ठंडी कैसे रह सकती है ? ठंडापन नहीं रह सकता। इसकी कुछ न कुछ हलचल चालू हो ही जायेगी।

मुमुक्षु :– ज्ञानीपुरुषको वह दिखता है ?

पूज्य भाईश्री :– उसकी कुछ एक बात ऊपरसे ख्याल आ जाता है। उसके चिह्न दिखे (इसलिये) ख्याल आ जाता है।

जैन संप्रदायमें एक नया भूत पैदा हो गया कि, कर्म परेशान करते हैं। हमको तो आत्मकल्याण करना ही है। क्यों नहीं करें ? लेकिन जो कर्म हैं न ! वे करने नहीं देते। हमारे कुछ कर्म ऐसे हैं कि जो (आत्मकल्याण) करने नहीं देते। ये नया भूत (पैदा हो गया है)। ये नया भूत लागू हो गया। तीनों संप्रदायमें – स्थानकवासीमें, दिगंबरमें, श्वेतांबरमें (यही चल रहा है)। ये कर्मका भूत है। ज्ञानी क्या कहते हैं मालूम है? ये कर्म संख्यामें तो बहुत हैं (लेकिन सब मच्छर हैं)। ये कर्मके हजारों, लाखों, अनंत परमाणु हैं, वे सब मच्छर हैं, मच्छर ! सिंहके आगे मच्छरकी क्या औकात! नींदमें सोया हुआ सिंह करवट भी बदलेगा न तो मच्छर भगने लग जायेंगे। जगेगा तो क्या होगा !! एक भी खड़े नहीं रहेंगे। सिंह नींदमें करवट बदलता है तो भी मच्छर उड़ने लगते हैं। फिर (अगर) मालूम पड़ता है कि वापिस सो गया तो, वापिस बैठ जायेंगे। भले ही बड़ी संख्यामें – बड़ी तादातमें आते हैं, फिर भी मच्छर है वह मच्छर है और सिंह है वह सिंह है ! ज्ञानी इस तरह (मुमुक्षुको) जागृत करते हैं कि, तुम तो सिंह हो ! तुम ये कर्मके मच्छरोंसे क्यों डरते हो ? और जो तुमको डराते हैं, वे आत्माके सिंह स्वरूपको जानते नहीं।

आत्मामें अनंत आनंद भरा है, अनंत सुख भरा है और स्वाधीन है। तो भी मैं पुण्यसे सुखी हो जाऊँगा ! (ऐसा अज्ञानी मानता है, और कहता है)। तो (ज्ञानी) कहते हैं कि, तुमको शर्म नहीं आती है ? उसकी मदद लेता है। तुम अनंत शक्तिवाले चैतन्य हो ! अनंत शक्तिके धनी हो ! और तुम परमाणुकी मदद लेते हो, तुमको शर्म नहीं आती है ? क्या हो गया है तुमको ? गुरुदेव क्या कहते थे ? तुमको क्या हो गया ? अररर... तुमको क्या हो गया? ऐसा कहते थे। अररर... तुमको ये हो गया क्या? तुम अनंत शक्तिके धनी हो ! और तुम कहते हो, मुझे रोटीके दो टुकड़े मिल जाये तो ठीक है ! या दो रोटी मिल जाये तो ठीक है ! क्या है ? तुम चार-छः रोटी खाते हो, इसमें कितना आटा (लगता है) ? मुट्ठीभर आटेके लिये तुम दीन होकर घूमते हो, अनंत शक्तिके, अनंत ज्ञानके धनी (होकरके भी दीन बनकर घूमते हो)! क्या हो गया है तुमको? ऐसा कहते थे।

अब जो बात कहते हैं, बहुत बढ़िया बात

की है। *'जिस प्रकारसे पुत्रादि सम्पत्तिमें इस जीवको मोह होता है, वह प्रकार सर्वथा नीरस और निंदनीय है।'* क्या (कहते हैं) ? संसारमें *'जिस प्रकारसे पुत्रादि सम्पत्तिमें...'* (अर्थात्) पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, मा-बाप, भाई-बहन (इत्यादि) जो भी जितने भी (कुटुंबीजन) हैं (और) सर्व दूसरी संपत्ति-साधन-सामग्री, आबरू-कीर्ति इत्यादि - 'ये सब मेरे हैं' (ऐसे) मेरापन होना इसे कहते हैं 'मोह'। मोह माने क्या? (परपदार्थमें) अपना अस्तित्व नहीं होनेके बावजूद भी (वहाँ) अपनापन लगता है। (वहाँ) अस्तित्व नहीं है। अपने अस्तित्वसे शून्य है। फिर भी अपनापन लगता है। *'वह प्रकार सर्वथा नीरस और निंदनीय है।'* (यानी) रस लेने योग्य भी नहीं है और प्रशंसाके योग्य भी नहीं है। (बल्कि) निंदाके योग्य है।

यह बात लोगोंने बहुत सामान्य बना ली है। बड़ा अपराध होनेके बावजूद भी उसे फ़र्ज़ और धर्ममें ले लिया है। कुटुंबधर्म - कुटुंबफ़र्ज़में ले लिया है। (लोग ये कहते हैं) 'खुब अपनापन करो, ज्यादा अपनापन करो, बहुत-बहुत अपनापन करो।' यद्यपि आपसमें एक - दूसरेको service देना - काम करना वह अलग बात है (और) अपनापन करना अलग बात है। इसका मतलब वह नहीं है कि, हम आपका काम नहीं करेंगे, जाओ ! ये बात नहीं है। काम तो करो नम्रतासे लेकिन अपनापन करके नहीं। परायापन रखकर करो।

पड़ोसमें भी कोई बीमार होता है तो हम लोग क्या बोलते हैं ? 'हमारे यहाँ इस बीमारीकी इतनी-इतनी दवा हैं, (उसमेंसे) कोई भी ले जाओ। और हमारे लायक कोई काम - सेवा हो तो हम खड़े पैर तैयार हैं।' और क्या कहेंगे? 'हमारा घर आपका ही घर है।' क्या बोलेंगे ? 'हमारा घर है वह आपका ही घर है। आप कुछ भी संकोच मत रखिये।' लेकिन पराया कभी अपना होता नहीं। कितना भी प्रेमसे बोले - स्नेहसे बोलते हैं न ? (फिर भी) कोई परायेको अपना करता नहीं। (वैसे कुटुंबमें) ऐसे कुछ भी करो - अच्छी से अच्छी सेवा करो लेकिन अपनापनका अपराध करके नहीं। (अपनापन) यह बड़ा अपराध है। उसको lightly मत लेना - हलकेसे मत लेना। वह (प्रकार) सर्वथा निंदनीय है, ऐसा लेना। क्योंकि जीवको अधोगतिमें जानेका कारण यह मोह और मेरापन है।

कोई कतलखाना लगाता है तो बड़ा अपराध दिखता है। कतलखाना लगाता है तो बड़ा अपराध लगता है। लेकिन अपनापन करता है वह बड़ा अपराध नहीं लगता। लेकिन कतलखाना किसने लगाया ? जिसने अपने परिवारमें अपनापन किया (है) उसने। तुमने आज नहीं लगाया है तो कल तुम लगानेवाले हो, देख लेना ! यह अपनापन तुमको (भी) कतलखाना लगवायेगा, ये (काम) तुम्हारे पास करवायेगा! इसलिये अपनापन करना (वह बड़ा अपराध है)।

ज्ञानी क्या (कहते हैं) ? ये अपनापन - मोह जो है उसे मिटानेका उपदेश देते हैं। और अज्ञानी क्या कहते हैं कि, तुम बीड़ी मत पिओ, तुम चाय मत पिओ, तुम एक बार खाना खाना, इतना खाना छोड़ दो, उतना खाना छोड़ दो, इसका पच्चखाण ले लो, इसका व्रत ले लो, तुम नियम ले लो। (परंतु) मोहके विषयमें कुछ

नहीं बोलेंगे। (जबकि) ज्ञानी मोहको छुड़ाते हैं। (और कहते हैं) मोहको मारो ! यह मोह तुमको अपनापन कराता है।

मुमुक्षु :- घरमें कोई घरवालोंका विपरीत अभिप्राय हो तो उसमें क्या करना ?

पूज्य भाईश्री :- उनका विपरीत अभिप्राय उनके पास। उनके परिणाम उनके पास। हमें तो दोनोंके बीच जो संबंध है उसे लौकिक स्तरमें निभाना है। लौकिक स्तरमें जो भी duty है, वह duty render करो - service render करो। क्यों ? हम भी उन लोगोंसे कुछ लेते हैं। हमने कुछ लिया भी है। हम मुफ्तमें लेनेवाले नहीं है। हमको भी रोटी मिलती है, घरमें कुछ हमारी भी सुविधा होती है। होती है कि नहीं होती है ? तो क्या सब हम करते हैं क्या ? रोटी भी हम बनाते हैं क्या ? कोई दुकान पर जाता है तो कोई रोटी बनाता है। कोई दूसरी सेवा करते हैं, कोई और सेवा करते हैं। सबकी duty सब करे। यह तो आपसमें मुफ्तमें लाभ नहीं लेनेकी बात है। अपनापन करना नहीं है। वह भगवानने निषेध किया है। वह तुम मत करो ! बाकी तुम्हारे भी कुछ काम (दूसरेसे) होते हैं तो तुम भी कुछ काम कर दो। एक काम वह करता है तो दो काम तुम कर दो। भले ही वह एक करे, तुम दो (काम) कर दो, उसमें क्या आपत्ति है ! काम करनेमें क्या आपत्ति है ? और ये पूर्वकर्म भी तुम लेकर आये हो। पूर्वकर्मके वशात् सब संयोग-वियोग हैं। और (पूर्वकर्म) सबके अपने-अपने हैं। इसलिये अपनापन नहीं करके, पूर्वकर्मके जो भी उदय हैं उन्हें निपटाते जाओ... निपटाते जाओ। कर्मके सब खातोंको निपटाते जाओ... खाते खतम करो। सब खातोंको बंद करो, nil करते जाओ। जो भी कर्ज़ किया है, लेना-देना साफ (कर दो) ! इसके बिना मुक्ति नहीं है।

मुमुक्षु :- अभी बात चली उस संदर्भमें - किसीका विपरीत अभिप्राय हो तो उसका निषेध आना एक बात है, लेकिन द्वेष नहीं होना चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- किसीके (भी) प्रति द्वेष करनेका उपदेश ही धर्ममें नहीं है। कोई (भी) धर्ममें नहीं है। हमारे धर्मका तो सवाल ही नहीं है। यह तो बहुत ऊँचे स्तरका धर्म है। किसीके प्रति द्वेष करनेका (उपदेश नहीं है)। चाहे घरवाले हो चाहे बाहरवाले हो, किसीके प्रति द्वेष करनेकी बात है ही नहीं। और कैसा भी उदय हो, समभावसे रहो ! उदय कैसा भी हो - अनुकूलताका हो या प्रतिकूलताका (हो) ! अनुकूलतामें राज़ी होनेकी ज़रूरत नहीं, प्रतिकूलतामें नाराज़ होनेकी ज़रूरत नहीं।

मुमुक्षु :- परद्रव्य पर द्वेष करना या नहीं करना?

पूज्य भाईश्री :- नहीं... नहीं.... नहीं... किसी पर द्वेष नहीं करना, किसीको मारना नहीं (है)। सब आत्मा ही आत्मा है। हमारी नज़रमें सब साधर्मी हैं - कोई परधर्मी है ही नहीं। हमारी जातिका है तो सब साधर्मी हैं। कोई परधर्मी है ही नहीं। सब भगवान आत्मा हैं ! क्या हैं? (भगवान आत्मा हैं) !

*

(शेष प्रवचन अगले अंकमें..)

# 'मार्गदर्शन'

– 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

प्रश्न :– परिणाममेंसे एकत्व छोड़ देना, यही आपका कहना है ?

उत्तर :– बस...यही कहना है। परिणाममेंसे एकत्व छोड़ दो ! लेकिन यह एकत्व छूटे कैसे ? – नित्य स्वभावमें एकत्व करे तब। निश्चय नित्य स्वभावमें दृष्टि जमाकर, परिणाम मात्रसे एकत्व उठा लेना। (२५६)

*

प्रश्न :– वृत्ति उठती रहती है, वह कैसे रुक जाए?

उत्तर :– एक समयकी वृत्तिको उसीमें रहने दो। 'मैं' त्रिकाली तो एक समयकी वृत्तिमें जाता ही नहीं। त्रिकालीमें अपनापन होते ही वृत्ति भी खिंचीज जायेगी (खिंची चली आएगी)। (२५७)

*

पर्याय (त्रिकाली) द्रव्यसे सर्वथा ही भिन्न है; प्रमाणमें अभिन्नता भी कहनेमें आती है, लेकिन प्रमाण निश्चयनयको झूठा करके नहीं कहता है; निश्चयसे तो पर्याय सर्वथा भिन्न है। प्रदेश एक होनेसे प्रमाण उनको अभिन्न कहता है; प्रमाण अभिन्न ही कहता है–ऐसा नहीं है; भिन्न–अभिन्न दोनों कहता है। परन्तु 'एकान्त भिन्न है'– ऐसा ज़ोर दिए बिना, पर्यायमेंसे दृष्टि उठेगी नहीं। ''अनेकांत पण सम्यक् एकान्त एवा निज पदनी प्राप्ति सिवाय अन्य हेतुए उपकारी नथी''–यही सत्य है। (२६५)

*

प्रश्न :– परिणाम कैसे सुधरें ?

उत्तर :– नित्य अपरिणामी ध्रुवधाममें दृष्टि विराजमान करनेसे परिणाम सुधरने लगेंगे। (२६७)

*

आख़िर तो सदा एकान्त (अकेला) ही रहना है. तो शुरूसे ही (एकान्तका) दो–चार–पाँच घण्टोंका अभ्यास चाहिए। (२६८)

*

यह सब (तत्त्वकी) बात विकल्पात्मकरूपसे जान लेनेसे शान्ति नहीं मान लेना, अभेद–दृष्टि प्रकट करना। (२७२)

*

## मैं ज्ञायक हूँ – ऐसी परिणति प्रगट कर !

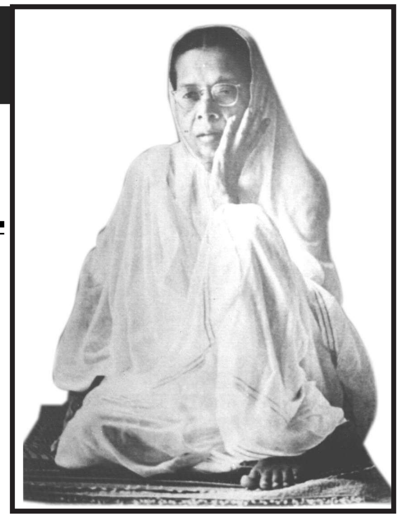

**तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी –१५ – A**

**- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन**

मुमुक्षु :– माताजी! अनुभव ऐसा होता रहता है कि जिस विषय में, जिस विकल्प में, जो विकल्प आता है उसमें ज्ञान एकाकार होकर उसे ही जानता हुआ परिणमन करता रहता है। अब, उस वक्त विकल्पात्मक अभ्यास करना है। इसलिये विकल्प में उस वक्त वह विकल्प आया तो एक दूसरा विकल्प उत्पन्न किया कि मैं तो यह जाननेवाला है वही हूँ। यह भिन्न जाननेवाला है वह मैं हूँ। इसप्रकार अभ्यास में ऐसा कुछ प्रयत्न करें तो थोड़ी देर ऐसा कुछ बन पाता है। पूजा, भक्ति, खाते-पीते, सोते, चलते-फिरते सब में आप का कहना ऐसा है कि तू इसप्रकार का अभ्यास कर। तो इसप्रकार ही विकल्पपूर्वक पहले तो अभ्यास चलेगा।

समाधान :– विकल्प साथ में आये बिना रहता नहीं। अभी निर्विकल्प दशा और निर्विकल्प स्थिति हुयी नहीं है। विकल्प छूटकर स्वानुभूति स्वरूप परिणमित नहीं हुआ है। इसलिये सहज भेदज्ञान की धारा उसे नहीं है, इसलिये उसे बीच-बीच में विकल्प आता है कि मैं भिन्न हूँ। इसप्रकार बारंबार प्रतिक्षण, मैं भिन्न हूँ, ऐसा अभ्यास करे। बीच-बीचमें विकल्प (आते हैं), एक विकल्पमेंसे दूसरा विकल्प आता है। लेकिन उसके पीछे उसकी परिणति भाव को ग्रहण करके परिणति यदि वापस मुड़े तो वह बराबर है। लेकिन वह नहीं पलटती हो तो उसे उसप्रकार का अभ्यास शुरुआत में होता है।

मुमुक्षु :– विकल्प की भूमिका के दौरान बीच में थोड़ाबहुत जिस प्रमाण में भावभासन जैसा हो तो उसे भेदज्ञान का प्रयोग कह सकते हैं?

समाधान :– भावभासन हो तो भेदज्ञान का प्रयोग होता है, प्रयोग है। नहीं तो विकल्परूप है उसे।

मुमुक्षु :– आपने बीच में कहा न कि निर्णय करके परिणति इस ओर मोड़नी चाहिये। निर्णय करके परिणति इस ओर मोड़नी चाहिये उसमें आपको क्या कहना है?

समाधान :– निर्णय तो किया कि मैं ज्ञायक हूँ। निर्णय किया, मैं ज्ञायक हूँ। लेकिन ज्ञायक ज्ञायकरूप रहता नहीं है तो ज्ञायक की ज्ञायकरूप परिणति प्रगट करे तो वास्तविक प्रगट हो न। श्रद्धा में तो ज्ञायक को लिया कि मैं ज्ञायक हूँ, परन्तु कोई भी विकल्प जब आता है, तब ज्ञायक ज्ञायकरूप तो भासित नहीं होता है। श्रद्धा में ज्ञायक लिया। जब अनेक प्रकारके विकल्प चलते हैं तो ज्ञायक ज्ञायकरूप तो भासित नहीं होता। श्रद्धा में ज्ञायक लिया। जब अनेक प्रकारके विकल्प चलते हो तो

ज्ञायक ज्ञायकरूप भासित नहीं होता और ज्ञायक का किसी प्रकार का उसे अन्दर वेदन नहीं है, तो भासित नहीं होता। तो श्रद्धा उसे कहते हैं कि श्रद्धा का बल अर्थात् तुझे ऐसी श्रद्धा है। जो श्रद्धा है कि मैं ज्ञायक ही हूँ, तो उस रास्ते पर उसे जाना ही नहीं चाहिये। यदि श्रद्धा का वास्तविक बल होतो कर्तृत्व के रास्ते पर, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा बल उसे अन्दरसे आना ही चाहिये। तो उसकी श्रद्धा बराबर है। उसकी श्रद्धा की, तो श्रद्धा का कार्य ऐसा आना चाहिये कि प्रत्येक क्षण कर्ता के परिणाम वक्त मैं ज्ञायक हूँ, उस प्रकार का बल और उस प्रकार की परिणति उसे अन्दरसे आनी चाहिये।

एक श्रद्धा की कि इस रास्तेपर जाने जैसा नहीं है, यह गलत है, मैं कर्ता नहीं हूँ, परपदार्थ को मैं कर नहीं सकता। ये विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो ज्ञायक हूँ। ऐसा नक्की किया तो ऐसी रुचि हो तो उसे ज्ञायकरूप रहने का प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं। इस रास्तेपर जाना है तो यह रास्ता बराबर नहीं है, यह गलत रास्ता है, यह विपरीत रास्ता है। उसमें यह नगर आयेगा नहीं। तो ऐसा नक्की किया कि नहीं आयेगा तो उस ओर कदम रखने का क्या प्रयोजन है? इसलिये जिस रास्ते नगर आये उस रास्तेपर कदम रखने का प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं। उसकी श्रद्धा का बल, भले उसप्रकार का धीरे–धीरे हो लेकिन उसकी श्रद्धा को उतना कार्य तो करना चाहिये।

*

( तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

## आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जून–२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
आगम, श्लोका, वैदेही और मोक्ष (मुंबई)
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

## पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीकी ११४वीं जन्म जयंती आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न

परम उपकारी पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीकी ११४वीं जन्म जयंती 'गुरु– गौरव', सोनगढ़में आनंदोल्लासपूर्वक मनाई गई । इस मंगल अवसर पर बंबई, कोलकाटा, अहमदाबाद, आग्रा, भावनगर इत्यादि शहरोंसे अनेक मुमुक्षुओंने लाभ लिया।

दि. ०८–०५–२०२५ जन्म जयंतीके दिन बालकुंवरका पारनाझुलन, जन्मबधाई एवं गुरुभक्ति आदि कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए ।

**यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है।**

**-आज्ञांकित सेवक सोभाग लल्लुभाई**

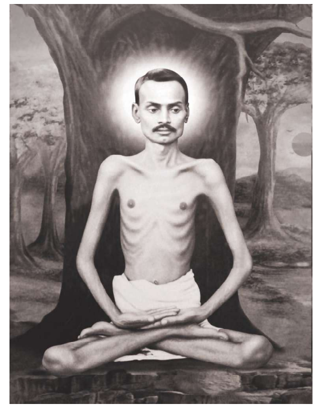

*(परम कृपालुदेवके प्रत्यक्ष योगमें पू. श्री सौभाग्यभाईके आत्मा ऊपर जो उपकार हुआ वह उनके ही शब्दोंमें निम्न पत्रमें प्रसिध्द हुआ है।)*

**सायला – जेठ शुक्ल – १४, रवि – १९५३**

**परम पुरुष, तरणतारण, परमात्मदेव, कृपानाथ, बोधस्वरूप, देवाधिदेव, महाप्रभुजी, सहजात्म स्वरूपकी सेवामें। बंबई ।**

**श्री सायलासे लि. आपका आज्ञांकित सेवक पामरमें पामर सोभाग लल्लुभाईके नमस्कार पढना।.....**

**''.....देह और आत्मा भिन्न है। देह जड है। आत्मा चैतन्य है। उस चेतनका भाग प्रत्यक्ष तौर से भिन्न समझमें नहीं आता था। लेकिन ८ दिनसे आपकी कृपासे अनुभव गोचरसे दो टूक प्रगट भिन्न दिखाई देता है और रात-दिन यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है। यह आपको सहज जानने हेतु लिखा है.....''**

---

## जीवके परिणामकी विचित्रता !!

**...विचित्रता तो कैसी है? कि जो चीज़ अपनी नहीं है, कायम अपने साथ रहनेवाली भी नहीं है, चाहे कितना भी ममत्व कर लो, शरीरसे लेकर, रुपयेंसे लेकर, घरसे लेकर, कुटुम्ब-परिवारसे लेकर कहीं भी कितना ही ममत्व कर लो, चाहे जितने रससे ममत्व कर लो, कोई संयोग कायम साथ रहे ऐसा किसीके लिये न तो सम्भव हुआ है नाहि सम्भव होनेवाला है। फिर भी यह जीव पूराका पूरा इसीमें डूबा हुआ है जबकि जो शाश्वत चीज़ स्वयं ही है उसकी दरकार नहीं करता! यह एक जीवकी सबसे बड़ी विचित्रता है।**

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-५६, 'अध्यात्म सुधा' भाग - २, पन्ना-२१२ )

## आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं !

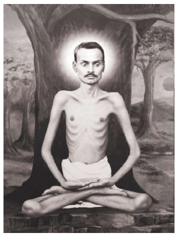

धन्य गुरु !!
धन्य शिष्य !!

## शिष्यरत्न सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाई संबंधित हृदयोगार!!

आपकी सर्वोत्तम प्रज्ञाको नमस्कार करते हैं। कलिकालमें परमात्माको किन्हीं भक्तिमान पुरुषोंपर प्रसन्न होना हो, तो उनमेंसे आप एक हैं। हमें आपका बड़ा आश्रय इस कालमें मिला और इसीसे जीवित हैं। (पत्रांश–२१५)

*

और वारंवार यही रटन रहनेसे 'वनमें जायें' 'वनमें जायें' एसा मनमें हो आता है। आपका निरन्तर सत्संग हो तो हमें घर भी वनवास ही है। (पत्रांश –२१७)

*

आज आपका एक पत्र मिला। पढ़कर हृदयांकित किया। इस विषयमें हम आपको उत्तर न लिखें इस हमारी सत्ताका उपयोग आपके लिये करना योग्य नहीं समझते; तथापि आपको, जो रहस्य मैंने समझा है उसे जताता हूँ कि जो कुछ होता है सो होने देना, न उदासीन होना, न अनुद्यमी होना, न परमात्मासे भी इच्छा करना, और न दुविधामें पड़ना, कदाचित् आपके कहे अनुसार अहंता आड़े आती हो तो यथाशक्ति उसका रोध करना, और फिर भी वह दूर न होती हो तो उसे ईश्वरार्पण कर देना; तथापि दीनता न आने देना। क्या होगा? ऐसा विचार नहीं करना, और जो हो सो करते रहना। अधिक उधेड़–बुन करनेका प्रयत्न नहीं करना। अल्प भी भय नहीं रखना, उपाधिके लिये भविष्यके एक पलकी भी चिन्ता नहीं करना, चिन्ता करनेका जो अभ्यास हो गया है, उसे विस्मरण करते रहना, तभी ईश्वर प्रसन्न होगा; और तभी परमभक्ति पानेका फल है; तभी हमारा–आपका संयोग हुआ योग्य है। और उपाधिमें क्या होता है उसे हम आगे चलकर देख लेंगे। 'देख लेंगे' इसका अर्थ बहुत गंभीर है। (पत्रांश–२१७)

*

वेदनाके समय साता पूछनेवाला चाहिये, ऐसा व्यवहारमार्ग है; परन्तु हमें इस परमार्थमार्गमें साता पूछनेवाला नहीं मिलता; और जो है उससे वियोग रहता है। तो अब जिसका वियोग है ऐसे आप हमें किसी भी प्रकारसे साता पूछें ऐसी इच्छा करते हैं। (पत्रांश–२४४)

*

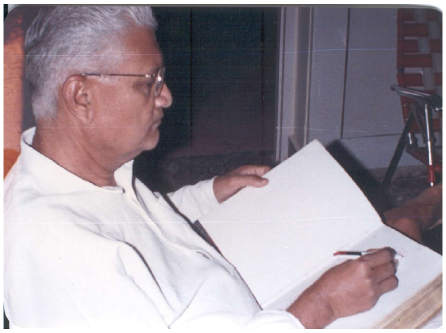

# किसीका साथ कायम नहीं होता !!

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

*'यह तो पंखीका मेला जैसा है।'* क्या है? *'इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायँगे।'* फिर चाहे वे कुटुम्ब परिवारके सदस्य हो चाहे मुमुक्षु मंडलके सदस्य हो या बाहरी समाजके सदस्य हो, गाँवके सदस्य हो, देशके सदस्योंको लोग देशवासी कहते हैं। हम गुजराती, हम भारतीय, हम भावनगर निवासी या हम इस कुटुम्बके, इस कुलके, इस मुमुक्षु मंडलके, इस संस्थाके जो भी हो सब बिछड़ जायेंगे, कोई कहाँ चला जायेगा, तो कोई कहाँ चला जायेगा, कोई कहाँसे कहाँ चला जायेगा। तूफ़ानके मध्यमें एक तिनका कहाँसे कहाँ उड़-उड़ कर गिरता है। हज़ारों-लाखों तिनकें हों कहाँसे कहाँ उड़-उड़ कर गिरते हैं। ऐसे संसारका एक तूफ़ान चल रहा है। कोई न जाने कहाँ गिरेगा तो कोई कहाँ गिरेगा।

प्रश्न : मुमुक्षु तो इकट्ठे रहेंगे न?

समाधान : कोई नियम नहीं है। सब मुमुक्षुओंको एक-से परिणाम नहीं होते। एक-से परिणाम है क्या? एक-सी योग्यता है क्या? इसका कोई नियम नहीं है। साथ रहनेका कोई नियम नहीं है, और मानों साथ रहे तो भी इसका कोई लाभ नहीं है। वर्तमानमें भी साथमें रहनेसे लाभ नहीं है और भविष्यमें भी साथमें रहनेसे कोई लाभ नहीं है। इससे कोई लाभ नहीं।

जैसे एक पेड़ पर अनेक पक्षी आकर बैठते हैं, अलग-अलग जगहसे आकर बैठते हैं वैसे अनेक जगहसे आये विभिन्न जीवोंका संयोग हुआ है। ऐसे संयोगमें तनिक भी ममत्व करने जैसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। *'यह तो पंखीका मेला जैसा है। इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायँगे।'* यह नियमबद्ध बात है। कोई साथ रह सके यह असम्भव है। वस्तुस्थिति ऐसी है। इसलिये ऐसा कहते हैं कि ये सारे संयोग केवल अनित्य हैं। जो अनित्य है, जो स्थायीरूपसे साथमें न रहे उसमें नित्यपना रखकर, रस लेकर तू दुःखके अलावा कोई फल नहीं पा सकोगे। इसका फल केवल दुःखके सिवा कुछ नहीं मिलेगा।

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-९९, 'अध्यात्म सुधा' भाग-३, पन्ना-२६९,२७०)

## आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे। श्री नीरव वोरा – ९८२५०५२९१३

# मुमुक्षु जीवके लिये उत्कृष्ट भक्तिका आदर्शरूप!!

## सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाई प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोगार!!

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

परम महात्मा पूज्य श्री सौभाग्यभाई महात्मा श्रीमद् राजचंद्रकी भक्तिमें एकलयसे रहे थे। ऐसी जो उनकी उत्कृष्ट भक्ति मुमुक्षु जीव के लिए आदर्शरूप है। जिस पराभक्तिसे गोपांगनाएं वासुदेवकी भक्तिमें रही थी और जिस भक्तिके कारण आत्मा परमात्मामें एकरूप हो जाए ऐसी पराभक्ति उनको प्राप्त थी। उनमें आत्मार्थिता, सरलता, लघुता आदि अनेक गुण थे। तथापि उपरोक्त पराभक्तिवशात् एक विशिष्ट गुण यह था कि 'ज्ञानीके मार्ग ऊपर चलनेका उनका अद्भुत निश्चय' देखकर कृपालुदेवने इस खास गुण के प्रति (पत्रांक – ७८३में) मुमुक्षुओंका ध्यान खींचा है। उनको प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञानी कृपालुदेव और परमात्मामें अंतर ही नहीं था। ऐसी सम्यक्प्रतीति पूर्वक कृपालुदेवके प्रति उनको अचल प्रेम था। जिसके कारण अंतमें वे ज्ञानदशाको प्राप्त हुए और इस भवके अंतिम कुछ ही गिनतीके दिनोंमें अनंत भवका छेदक सम्यक्त्व प्राप्त करके एक भवमें अनंत भवकी कमाई कर ली।

पूज्य श्री सौभाग्यभाईके जीवन परिचयके विषयमें संक्षेपमे उल्लेखनीय है कि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत नाज़ुक थी कि जिस स्थितिमे सामान्य मनुष्यको तो अनुकूल संयोगोंकी प्राप्ति करनेमें ही पूरी जिंदगी व्यतीत हो जाय। फिर भी उनकी आत्मकल्याणकी अभिलाषा असाधारण थी जो किसी भी मुमुक्षुके लिए गवेषणीय है।

परम कृपालुदेवकी भेंट होनेके बाद उनके प्रत्यक्ष समागममें रहेनेके लिए उनकी आत्मा हमेशा चिंतित रहा करती थी। और इन छः–सात वर्षकी अंतिम आयुके दौरान वे ५६० दिन भिन्न–भिन्न स्थानोंमें प्रत्यक्ष समागममें रहे थे। यह कह सकते हैं कि कृपालुदेवका प्रत्यक्ष समागम यह उनके जीवनकी एक परिणति बन गई थी। और कोई भी दिन ऐसा नहीं छूटा होगा कि उनको कृपालुदेवका स्मरण नहीं हुआ हो। कृपालुदेवमें ही उनका जीव लगा रहता था और वही उनकी परिणतिकी भजना थी। अंतिम अवस्थामें उन्होंने जो भाव व्यक्त किये थे वह उनकी पात्रताकी चरमसीमाको दर्शानेवाले हैं। उन्होंने कृपालुदेवको लिखा था कि 'अब रोगके कारणसे मेरा देह नहीं छूटेगा किंतु आपके वियोगकी वेदनासे देह छूटेगा'! इसके पहेले उन्होंने अनेक पत्रोंमें अनेक प्रकारसे सायला पधारने हेतु विनंती की थी किंतु ऐसा लगता है कि वियोगकी वेदना तीव्र होने के लिए ही वे सायला आनेमें देर करते रहे। जब पूज्य श्री सौभाग्यभाईके अंतिम हदके पात्रताके परिणाम देखे, कि शीघ्र ही वे प्रत्यक्ष दर्शनके लिए आ पहुँचे और वहाँसे 'बीजज्ञान' देनेके खास प्रयोजनार्थ उनको ईडर ले गये। जिसके फलस्वरूप ईडरसे आने के बाद उनको निर्विकल्प परमार्थ भवछेदक सम्यक्दर्शनकी – आत्म साक्षात्कारकी प्राप्ति हुई थी।

*REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026*
*RENEWED UPTO : 31/12/2026*
*R.N.I. NO. : 70640/97*
Title Code : GUJHIN00241
*Published : 10th of Every month at BHAV.*
*Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS*
*Total Page : 20*

# 'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

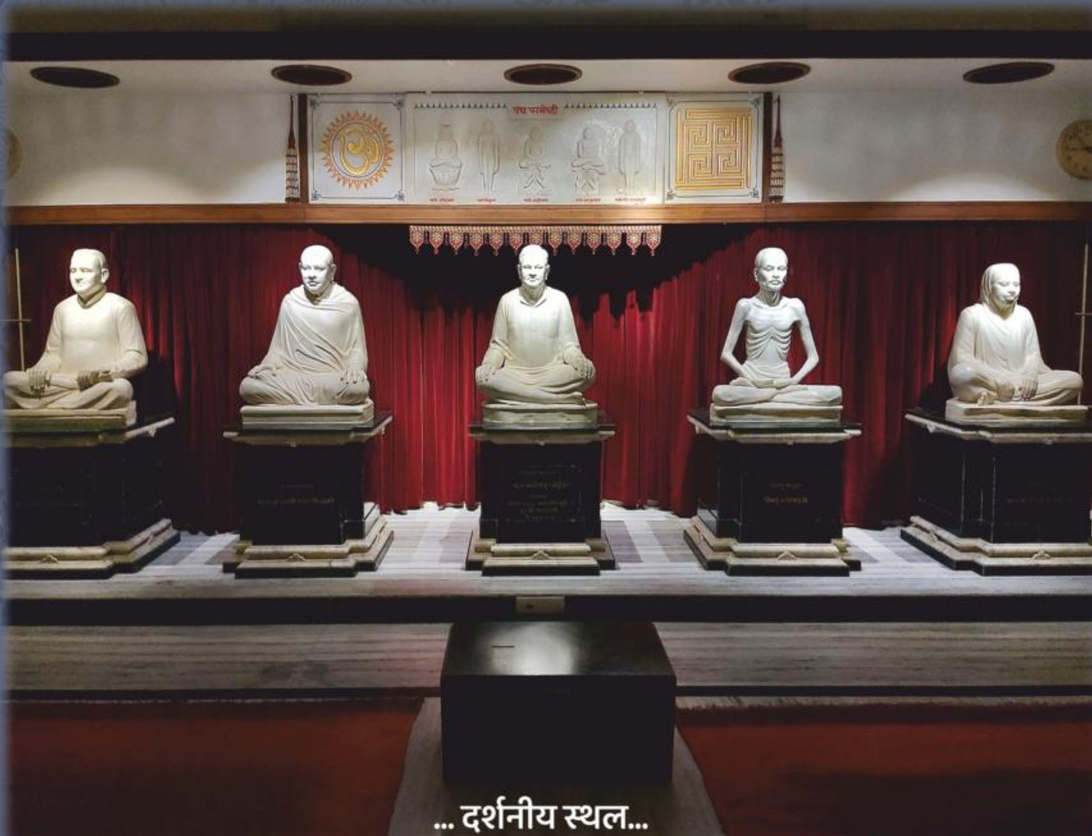


## श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
**भावनगर**

स्वत्वाधिकारी श्री सतश्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3600**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
**Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir**
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

majur process 9374825041